© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
International Journal of Scientific Research in Science and Technology

बज्जिका लोकगीतों का परिचय और वर्गीकरण

डॉ0 सुरभि
एम.ए., पीएच.डी. (संगीत)
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

लोकगीत का लोकसाहित्य में अपना विशेष स्थान है। यह लोक की परंपरागत विरासत है, अनुभूत अभिव्यक्ति और हृदयोगार है तथा जीवन का स्वच्छ और साफ दर्पण है जिसमें समाज के व्यक्त जीवन का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। लोकगीत ही लोक जीवन की वास्तविक भावनाओं को प्रस्तुत करता है। इसमें मनुष्य मात्र के पारिवारिक और सामाजिक जीवन का सामयिक तथा भावनात्मक चित्रण रहता है। जीवन के सभी पहलुओं एवं विभिन्न परिस्थितियों में मनुष्य की मानसिक एवं शारीरिक व्यापार जैसे भी होते हैं उनका यथा तथ्य चित्रण लोकगीत में मिलता है। लोकगीत में सामुहिक चेतना की पुकार मिलती है। इसमें जनता के जीवन का इतना विशद् चित्रण होता है कि उनमें किसी देश की मूल संस्कृति तथा जनजीवन के दर्शन का पूर्ण चित्रण मिल जाता है। लोकगीतों में हमारे देश की मूल संस्कृति जिसे हम लोक संस्कृति कहते हैं, विरासत के रूप में रखी हुई है।

लोकगीत के माध्यम से ही हम जनजीवन के सभी पक्षों का दर्शन करते हैं। हर जाति या जन समाज के अपने गीत होते हैं, जिनमें किसी समाज–विशेष की जीवनानुभूति की अभी व्यंजना होती है। जीवन की प्रत्येक अवस्था जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त, लोकगीत समयानुकूल भावनाओं को अभिव्यक्त दिया करता है।

लोकगीत में जीवन के हर्ष और निषाद, आशा और निराशा, सुख और दुख सभी की अभिव्यक्ति होती है। इसमें कल्पना के साथ रसवृत्ति, भावना और नृत्य की हिलोर भी अपना काम करती है, परंतु ये सब खाद हैं। लोकगीत हृदय के खेत में उगते हैं। इसमें हृदय का इतिहास इस प्रकार व्याप्त रहता है जैसे प्रेम में आकर्षण, श्रद्धा में विश्वास और करूणा में कोमलता। प्रकृति के गान में मनुष्य इस प्रकार प्रतिबिम्बित होता है जैसे कविता में कवि, क्षमा में मनोबल और तपस्या में त्याग। प्रकृति संगीतमयी है। लोकगीत प्रकृति के उसी महासंगीत के अंश हैं। जीवन का कोई ऐसा पहलू नहीं ऐसा दृष्टिकोण नहीं, ऐसा स्पन्दन नहीं जो लोक गीतों की सीमा को स्पर्श न करता हो। लोकगीत परंपरा के उस महानद के समान है जिसे अनेक छोटी–छोटी धाराओं ने मिलकर महासमुन्द्र बना दिया है। सदियों के घात प्रतिघात ने इसमें आश्रय पाया है। मन की विविध परिस्थितियों ने इसमें अपने ताने–बाने बुने हैं। स्त्री–पुरूष ने थककर इसके माधुर्य में अपनी थकान मिटाई है। इसकी ध्वनि में बालक सोच हैं जवानों में प्रेम की

मस्ती आयी है और बूढ़ों ने मन बहलाए हैं। बैरागियों ने उपदेष्टा का पान कराया है बिरही युवकों ने अपने मन की कसक मिटाई है, विधवाओं ने अपने एकाकी जीवन में रस पायी है पथिकों ने अपनी थकावटें दूर की है किसानों ने अपने बड़े–बड़े खेत जोते हैं मजदूरों ने विशाल भवनों पर पत्थर चढ़ाए हैं।

लोकगीतों से मनुष्य की व्यावहारिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। जैसे काम के बोझ को हल्का करना, अत्याचार का विरोध करना तथा सामान्य जनता का मनोरंजन करना।

लोकगीतों अशिक्षित सामान्य जनों के उपभोग का कलात्मक माध्यम है। लोकजीवन से इनकी विषय वस्तु प्राप्त होती है और वे ही उसमें सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। लोकगीतों का शिल्प भी इनके अनुसार ही होता है, जो अधिक ग्राह्य और गेय होता है।

लोकगीतों की उत्पत्तिः

लोकगीतों की उत्त्पत्ति के विषय में विद्वानों में एक मत नहीं है। इसकी उत्पत्ति का विषय प्रारंभ से ही विवादास्पद रहा है। इसकी रचना का श्रेय कोई समस्त लोक (लोक निर्मितवाद) को, कोई समुदाय (समुदायवाद को) कोई जाति (जातिवाद) की और कोई व्यक्ति (व्यक्तिवाद) को देता है। प्रथम वह जिसमें समष्टि के विविध रूपों द्वारा लोकगीत की रचना मानी जाती है और द्वितीय वह जिसमें किसी व्यक्ति को इसका रचयिता माना जाता है, परंतु इस मत में भी व्यक्ति की व्यक्तित्वहीनता और लोकगीत पर संपूर्ण समाज का अधिकार स्वीकार किया जाता है। जीकब ग्रिम एफबी गुमेर तथा स्टेंथल के विचार तथा एफजे चाइल्ड, विशप पर्सी और एडब्ल्यू श्लेगल के विचार से भिन्नता है।

ग्रिस के अनुसार, देशवासी लोकगीतों की सामूहिक रचना करते हैं। ग्रिम के आलोचकों का तर्क है कि जब समूह एकत्र हुआ तब उसमें प्रथम पंक्ति का आरंभ किसने किया ? इस प्रश्न का ग्रिम के पास कोई उत्तर नहीं है। तत्पश्चात् जाकर ग्रिम के इस विचार को हास्यापद बताया गया है। एफबी गुमेर का समुदायवाद ग्रिस के मत से मिलता–जुलता है। अंतर सिर्फ इतना ही है कि ग्रिम को ''लोक' बहुत बड़ा प्रतीत हुआ। उन्होंने लोक के स्थान पर एक विशिष्ट समुदाय की रचयिता बतलाया। किन्तु इनके सिद्धान्तों को भी विद्वानों द्वारा मान्यता नहीं मिल सकी।

स्टेथल का मत है कि समस्त जाति ही लोकगीतों की रचना करती है। उनका कहना है कि व्यक्ति को उन्नत संस्कृति एवं सभ्यता की एक इकाई है पर आदिम अवस्था में व्यक्ति का कुछ भी मूल्य नहीं था। समस्त जाति ही एक इकाई थी। अतः लोकगीत की उत्पत्ति एक जाति के सामूहिक प्रयास का ही परिणाम है।

भारतीय विद्वानों का ध्यान लोकगीतों की उत्पत्ति की ओर अभी तक नहीं गया है। रामनरेश त्रिपाठी ने इस विषय पर थोड़ा विचार अवश्य दिया है परंतु इस विषय में कोई निश्चित मत प्रस्तुत नहीं किया है। उनके मत से गीत स्रष्टा स्त्री पुरूष दोनों हैं, परंतु ये स्त्री पुरूष ऐसे हैं जो कागज–कलम का उपयोग नहीं जानते हैं। यह संभव है कि गीत की रचना में बीसो वर्ष और सैकड़ों मस्तिष्क लगे होंगे। इस उद्धधरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि त्रिपाठी जी का विचार ग्रिम को 'लोक निर्मितवाद' के अंतर्गत आ जाता है।

डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय लोकगीतों की उत्पत्ति के विषय में लिखते हैं हमारी धारणा सर्वदेशीय लोकगीतों की उत्पत्ति के संबंध में यह है कि प्रत्येक गीत का रचयिता मुख्यतः कोई न कोई व्यक्ति अवश्य है। साथ ही कुछ गीत जनसमुदाय का भी प्रयास हो सकता है। लोकगीतों की परंपरा सदा से ही मौखिक रही है। अतः यह बहुत संभव है कि लोकगीतों के रचयिताओं का नाम लुप्त हो गया ही। इस उद्धरण से प्रतीत होता है कि उपाध्याय जी मुख्य श्लेगल के व्यक्तिवाद से सहमत हैं साथ ही गुमेर के समुदायवाद को भी अस्वीकार नहीं करते।

बज्जिका लोकगीतों का अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि उपर्युक्त तीनों तत्वों का समावेश उनमें हुआ है। वास्तव में संसार के सभी देशों के लोकगीतों में उपर्युक्त तीनों तत्वों की अभिव्यक्ति हुई है।

संदर्भ सूची :

1. बज्जिका रामाएन, डॉ0 अवधेश्वर अरूण वर्ष 2003, अखिल भारतीय बज्जिका साहित्य सम्मेलन चेन्नै शाख द्वारा प्रकाशित।
2. मरइया के इजोर, डॉ0 रामबिलास (काव्य संग्रह), संस्करण अगहन विवाह पंचमी, 2008, स्वास्तिक प्रकाशन, मुजफ्फरपुर।
3. जनमानस (काव्य संग्रह), डॉ0 गंगा प्रसाद आजाद सतपलपुरी, संस्करण 2007, प्रमोद प्रिटिंग प्रेस, समस्तीपुर
4. बज्जिका केसरी (पत्रिका मासिक), प्रधान संपादक–अवधेश्वर अरूण, वर्ष 1998, प्रकाशन–बज्जिका जन जागरण मंच
5. कच देवयानी, प्रो. हरेंन्द्र विप्लव, वैशाली बज्जिका प्रकाशन, वैशाली प्रथम संस्करण 1986.